

## Acharya Shantisagar Muni Maharaj

Jainism, one of the world's oldest religions, promotes the principles of non-violence, purity, and peace. The life of a Jain monk exemplifies simplicity and devotion, and in this context, we honor Acharya Shantisagar Muni Maharaj—a true beacon of spirituality and selflessness.

In July 1872, amidst spiritual darkness, Satagouda (later known as Acharya Shantisagar) was born in Yelgula Village, Belgaum district. His father, Shri Bhim Gouda Patil, was a wealthy and devout landlord, while his mother, Satyavati, was known for her charity and saintly nature. This nurturing environment profoundly influenced Satagouda's early life.

From a young age, Satagouda displayed a remarkable detachment from worldly pleasures. A natural saint, thinker, and philosopher, he embodied virtues essential for a righteous life. His commitment to truth, compassion, and austerity set him on the path to sainthood. Seeking deeper spiritual guidance, he approached Devendra Kirtiji Maharaj (Devappa Swami), a revered Jain saint known for his extraordinary spiritual achievements. Eager to embrace renunciation, Satagouda requested initiation into monkhood. Devappa Swami prepared him for the challenges of a life dedicated to spiritual asceticism, ultimately initiating him as "Kshullaka" and bestowing upon him the name "Shantisagar," which means "ocean of peace."

During the Pancha Kalyanaka Mahotsav, Shantisagar sought "Muni Diksha," fully committing himself to monastic life. A remarkable incident during this period demonstrated his spiritual prowess: a venomous cobra coiled around him in a cave, yet he remained completely unscathed, showcasing his profound mastery over fear and attachment. Over his lifetime, Shantisagar traversed more than 35,000 miles, embodying the essence of Jain teachings. In 1924, he undertook an extraordinary fast lasting over three years to protect Jain culture and values, earning the title "Charitra Chakravarthi" in 1937.

In 1955, Shantisagar began preparing for his ultimate journey, seeking solitude at Kunthalgiri Hill, a site of deep spiritual significance. He chose to enter 'Ingini' Samadhi-Maran, a supreme form of death in which he sought no external assistance. On the 26th day of his fast, he delivered a profound message about the soul's liberation from material attachments and the necessity of self-control, emphasizing the importance of transcending the cycle of birth and death.

Acharya Shantisagar Maharaj left his earthly form on September 18, 1955, in Kunthalgiri, calmly uttering "Om Asi Aausa" and "Om Siddhaya Namah." His passing resonated across the nation, prompting heartfelt tributes, including one from Dr. S. Radhakrishnan, who recognized him as a prince among ascetics and a monumental loss to humanity.

Acharya Shantisagar's life continues to inspire self-realization and spiritual awakening. His unwavering commitment to peace, non-violence, and the pursuit of truth serves as a guiding light for all. May his memory endure, inspiring future generations toward spiritual growth and harmony.

In acknowledgment of Acharya Shantisagar's profound contributions to India's spiritual tapestry, the Department of Posts is proud to release a commemorative postage stamp on Acharya Shantisagar Muni Maharaj, honoring him as a guiding light in the realm of Indian spirituality.

### Credits:

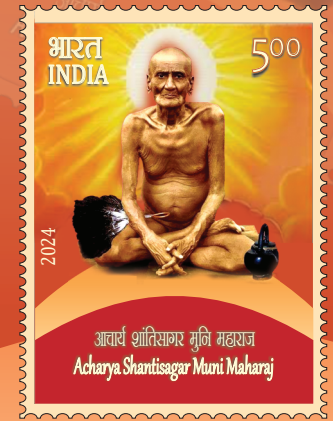
Stamp/FDC/Brochure/ : Ms. Neetu Arora

Cancellation Cachet

Text : Referenced from content provided by Proponent



डाक विभाग  
Department of Posts



विवरणिका  
BROCHURE

## आचार्य शांतिसागर मुनि महाराज

विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से एक जैन धर्म अहिंसा, पवित्रता और शांति के सिद्धांतों की सीख देता है। जैन साधुओं का जीवन सादगी और भक्ति का प्रतिरूप होता है। इसी संदर्भ में, आचार्य शांतिसागर मुनि महाराज का जीवन आध्यात्मिकता और निःस्वार्थता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

सतगौड़ा (कालांतर में आचार्य शांतिसागर के नाम से प्रसिद्ध) का जन्म जुलाई, 1872 में बेलगाम जिले के येलगुला गांव में हुआ। यह वह दौर था जब समाज में आध्यात्मिक अज्ञानता व्याप्त थी। उनके पिता भीम गौड़ा पाटिल एक समृद्ध और धर्मनिष्ठ जमींदार थे और उनकी माँ सत्यवती अपनी दानशीलता और साधुवत स्वभाव के लिए जानी जाती थीं। घर के इस धर्मनिष्ठ वातावरण का सतगौड़ा के आरंभिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सतगौड़ा के स्वभाव में बचपन से ही सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य के लक्षण स्पष्ट होने लगे थे। वे स्वभाव से ही संत, विचारक और दार्शनिक थे। उन्होंने धर्मपरायण जीवन के लिए अपेक्षित सभी गुणों को आत्मसात किया। सत्य, करुणा और संयम के भाव के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ने उन्हें महात्म्य के मार्ग पर अग्रसर किया। गहन अध्यात्म के इस मार्ग पर मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु सतगौड़ा ने तत्समय अपनी असाधारण आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए सुविख्यात प्रतिष्ठित जैन संत देवेन्द्र कीर्तिजी महाराज (देवप्पा स्वामी) का सान्निध्य प्राप्त किया। वैराग्य के मार्ग पर चलने के लिए उत्सुक सतगौड़ा द्वारा भिक्षु बनने की इच्छा प्रकट करने पर देवप्पा स्वामी ने उन्हें अध्यात्म और वैराग्य के प्रति समर्पित व्यक्ति के जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया। सतगौड़ा को “क्षुल्लक” के रूप में दीक्षा प्रदान की गई और उन्हें “शांतिसागर” नाम प्राप्त हुआ।

पंच कल्याणक महोत्सव के दौरान, शांतिसागर ने “मुनि दीक्षा” ग्रहण की और स्वयं को पूरी तरह से वैरागी जीवन के प्रति समर्पित कर दिया। इस दौरान एक उल्लेखनीय घटना घटी जिसमें शांतिसागर महाराज की आध्यात्मिक शक्ति देखने को मिली। एक गुफा के भीतर एक विषैले नाग ने स्वामी जी के चारों ओर कुण्डली मार दी, किन्तु उन्हें कोई हानि नहीं पहुंची। यह घटना भय और जीवन के मोह पर उनके पूर्ण एवं प्रबल नियंत्रण का प्रतीक है। शांतिसागर मुनि ने जैन धर्म की शिक्षाओं के सार तत्व को आत्मसात करते हुए अपने जीवनकाल में 35,000 मील से अधिक की यात्रा की। सन् 1924 में, मुनि शांतिसागर

ने जैन संस्कृति और मूल्यों के रक्षार्थ तीन वर्ष से अधिक समय तक अनवरत चलने वाला एक असाधारण व्रत आरंभ किया। जिसके फलस्वरूप, वर्ष 1937 में उन्हें “चरित्र चक्रवर्ती” की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् 1955 में शांतिसागर महाराज ने अपनी अंतिम यात्रा के लिए तैयारी आरंभ की। इस हेतु उन्होंने अप्रतिम आध्यात्मिक महत्व वाले कुंतलगिरि पर्वत पर एकांत स्थल का चयन किया। मुनि ने मृत्यु का सर्वोच्च मार्ग माने जाने वाले ‘इंगिनी’ समाधि-मरण मार्ग को चुना। इस प्रक्रिया में उन्होंने कोई भी बाहरी सहायता नहीं ली। अपने उपवास के 26वें दिन, शांतिसागर महाराज ने जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति के महत्व पर बल देते हुए ‘भौतिक अनुराग से आत्मा की मुक्ति’ और ‘आत्म-नियंत्रण की जरूरत’ के संबंध में एक गहन संदेश दिया।

18 सितम्बर 1955 को आचार्य शांतिसागर महाराज ने कुंतलगिरि में “ऊँअसि आउसा” और “ओम सिद्धाय नमः” का उच्चारण करते हुए अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया। उनके देहत्याग के समाचार से समस्त देश में शोक की लहर दौड़ गई। तमाम लोगों ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। डॉ. एस. राधाकृष्णन ने अपने श्रद्धांजलि संदेश में उन्हें संतों में श्रेष्ठ संत कहा और उनके निधन को मानवता के लिए एक अपूरणीय क्षति बताया।

आचार्य शांतिसागर का जीवन आज भी आत्म-साक्षात्कार और आध्यात्मिक जागृति की प्रेरणा प्रदान करता है। शांति, अहिंसा और सत्य की खोज के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता मानवमात्र के लिए प्रकाशस्तंभ के रूप में काम करती है। उनकी स्मृतियां सदैव हमारे हृदय में जीवित रहेंगी और उनका जीवन, भावी पीढ़ियों को आध्यात्मिक उन्नति और सद्भाव के मार्ग पर अग्रसर करता रहेगा।

डाक विभाग, भारतीय आध्यात्मिक जगत में एक देदीप्यमान प्रकाश-स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित शांतिसागर महाराज के अध्यात्म के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान के सम्मानस्वरूप स्मारक डाक-टिकट जारी करते हुए गौरवान्वित अनुभव करता है।

### आभार:

डाक-टिकट/प्रथम दिवस आवरण/  
विवरणिका/विरूपण केशे : सुश्री नीतू अरोड़ा  
पाठ : प्रस्तावक द्वारा प्रदत्त सामग्री  
से संदर्भित

## तकनीकी आंकड़े

### TECHNICAL DATA

मूल्यवर्ग	: 500 पैसे
Denomination	: 500 p
मुद्रितडाक-टिकटें	: 303450
Stamps Printed	: 303450
मुद्रण प्रक्रिया	: वेट ऑफसेट
Printing Process	: Wet Offset
मुद्रक	: प्रतिभूति मुद्रणालय, हैदराबाद
Printer	: Security Printing Press, Hyderabad

The philatelic items are available for sale at Philately Bureaus across India and online at [http://www.epostoffice.gov.in/PHILATELY\\_3D.html](http://www.epostoffice.gov.in/PHILATELY_3D.html)

© डाक विभाग, भारत सरकार। डाक टिकट, प्रथम दिवस आवरण तथा सूचना विवरणिका के संबंध में सर्वाधिकार विभाग के पास है।

© Department of Posts, Government of India. All rights with respect to the Stamp, First Day Cover and Information Brochure rest with the Department.

मूल्य ₹ 15.00